ईश्वर की अनंतता

लेखक :जयसिंह
jagpura@yahoo.com

ईश्वर की अनंतता एक ऐसा विषय है जो दर्शनशास्त्र, धर्मशास्त्र और मानव चेतना के गहन प्रश्नों को एक साथ जोड़ता है। यह विचार कि ईश्वर अनंत है—अर्थात् उसकी कोई सीमा नहीं, न समय में, न स्थान में, न ही गुणों में—मानव मन के लिए एक आकर्षक और चुनौतीपूर्ण अवधारणा प्रस्तुत करता है। यह संकल्पना हमें अपनी बौद्धिक और आध्यात्मिक सीमाओं का सामना करने के लिए मजबूर करती है, क्योंकि यह वह विचार है जो परिमित मानव अनुभव से परे एक ऐसी सत्ता की ओर संकेत करता है जो असीम और अज्ञेय है। इस लेख में हम ईश्वर की अनंतता को दार्शनिक दृष्टिकोण से विस्तारपूर्वक विश्लेषित करेंगे, इसके अर्थ को गहराई से समझने का प्रयास करेंगे, इसके प्रभावों पर विचार करेंगे, संभावित विरोधाभासों की पड़ताल करेंगे, वैदिक श्लोकों के माध्यम से इसकी पुष्टि करेंगे, और अंत में इसके व्यापक निहितार्थों पर प्रकाश डालेंगे।

ईश्वर की अनंतता का अर्थ

ईश्वर को अनंत मानने का तात्पर्य है कि वह सभी परिमितता की सीमाओं से परे है। वह न तो किसी प्रारंभिक बिंदु से उत्पन्न हुआ है और न ही किसी अंतिम बिंदु पर समाप्त होता है। उसका अस्तित्व किसी भौतिक स्थान तक सीमित नहीं है, न ही उसके गुणों को किसी परिमाण में मापा जा सकता है। यह विचार विभिन्न दार्शनिक और धार्मिक परंपराओं में अलग-अलग रूपों में व्यक्त हुआ है, लेकिन इसका मूल सार एक ही है—ईश्वर वह सत्ता है जो सभी परिभाषाओं और सीमाओं से मुक्त है।

वैदिक परंपरा में अनंतता

भारतीय दर्शन में, विशेष रूप से वैदिक साहित्य और उपनिषदों में, ईश्वर की अनंतता को बार-बार रेखांकित किया गया है।
बृहदारण्यक उपनिषद् में एक प्रसिद्ध श्लोक है: "पूर्णमदः पूर्णमिदं पूर्णात् पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते॥"
(यह पूर्ण है, वह पूर्ण है; पूर्ण से पूर्ण निकलता है। पूर्ण से पूर्ण को निकालने पर भी जो शेष रहता है, वह पूर्ण ही है।)
यह श्लोक ईश्वर की अनंतता को गणितीय और दार्शनिक रूप से व्यक्त करता है। यह दर्शाता है कि ईश्वर का स्वरूप ऐसा है कि उसमें से कुछ निकालने या जोड़ने से उसकी पूर्णता पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता—वह हमेशा पूर्ण और असीम रहता है।
उपनिषदों में ईश्वर को "नेति-नेति" (न यह, न वह) के रूप में भी वर्णित किया गया है। ईशावास्य उपनिषद् में कहा गया है:
"तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥"
(वह चलता है, वह नहीं चलता; वह दूर है, वह निकट है। वह सबके भीतर है, और वह सबके बाहर भी है।)
यह श्लोक ईश्वर की अनंतता को उसकी सर्वव्यापकता और असीमता के संदर्भ में प्रस्तुत करता है, जो उसे समय, स्थान और परिवर्तन की सीमाओं से परे रखता है।

पश्चिमी दर्शन में अनंतता

पश्चिमी दर्शन में, मध्ययुगीन ईसाई दार्शनिक थॉमस एक्विनास ने ईश्वर को "प्रथम कारण" (First Cause) या "स्वयंभू सत्ता" (Necessary Being) के रूप में परिभाषित किया। उनके अनुसार, ईश्वर वह सत्ता है जो अपने आप में पूर्ण है और जिसका अस्तित्व किसी अन्य पर निर्भर नहीं करता। यह विचार ईश्वर को एक ऐसी अनंत सत्ता के रूप में स्थापित करता है जो सृष्टि के कारणों की श्रृंखला से परे है। एक्विनास का यह तर्क वैदिक दर्शन से भिन्न होते हुए भी अनंतता के मूल विचार को प्रतिध्वनित करता है—ईश्वर वह है जो सभी सीमाओं से मुक्त है।

सृष्टि से भिन्नता

ईश्वर की यह अनंतता उसे सृष्टि से स्पष्ट रूप से अलग करती है। सृष्टि—चाहे वह ब्रह्मांड हो, प्रकृति हो, या मानव जीवन—समय, स्थान और कारण-कार्य के नियमों से बंधी हुई है। यह परिमित है, क्योंकि इसका एक प्रारंभ है, एक मध्य है, और संभवतः एक अंत भी। ऋग्वेद में सृष्टि के प्रारंभ की चर्चा करते हुए नासदीय सूक्त (10.129) कहता है:
"नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥"
(न सत् था, न असत् था तब; न अंतरिक्ष था, न आकाश उसके परे। क्या छिपा था, कहाँ, किसके संरक्षण में? क्या जल था, गहन और गहरा?)
यह श्लोक सृष्टि के प्रारंभ से पहले की स्थिति का वर्णन करता है, जो ईश्वर की अनंतता को उस सृष्टि से अलग करता है जो समय और स्थान में बंधी है। ईश्वर इन सीमाओं से मुक्त है—वह न केवल सृष्टि का सृजनकर्ता है, बल्कि सृष्टि से परे भी है। यह विशेषता उसे एक ऐसी रहस्यमयी सत्ता बनाती है, जिसे मानव बुद्धि पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ है, क्योंकि हमारी सोच स्वयं परिमितता के ढांचे में बंधी है।

दार्शनिक निहितार्थ

ईश्वर की अनंतता की अवधारणा कई गहन दार्शनिक प्रश्नों को जन्म देती है, जो मानव जीवन, सृष्टि और ईश्वर के स्वरूप को समझने की हमारी कोशिशों को चुनौती देते हैं।

ईश्वर और परिमित सृष्टि का संबंध

सबसे पहला और महत्वपूर्ण प्रश्न यह है कि यदि ईश्वर अनंत है, तो क्या वह परिमित सृष्टि के साथ कोई सार्थक संबंध स्थापित कर सकता है? यह प्रश्न ईश्वर और मानव के बीच के संबंध की प्रकृति को केंद्र में लाता है। भारतीय वेदांत दर्शन इस समस्या का

जवाब “माया” की अवधारणा के माध्यम से देता है। वेदांत के अनुसार, संसार—जो हम देखते और अनुभव करते हैं—एक भ्रम मात्र है। यह परिमितता का आभास है, जबकि वास्तविक सत्य केवल ईश्वर की अनंतता है। छांदोग्य उपनिषद् में कहा गया है:
“सर्वं खल्विदं ब्रह्म तज्जलानिति शान्त उपासीत।”
(यह सब कुछ ब्रह्म ही है; यह उससे उत्पन्न हुआ, उसमें लीन होता है, और उसी से संचालित है।)
यह श्लोक इस विचार को बल देता है कि परिमित संसार केवल अनंत ईश्वर की अभिव्यक्ति है, और माया के कारण हम इसे अलग मानते हैं। अद्वैत वेदांत में यह तर्क दिया जाता है कि आत्मा (आत्मन्) और ईश्वर (ब्रह्मन्) एक ही हैं; केवल अज्ञान के कारण हम इस एकता को नहीं देख पाते।

पश्चिमी परंपरा में, विशेष रूप से ईसाई दर्शन में, इस प्रश्न का उत्तर अलग ढंग से दिया गया है। यहाँ ईश्वर की अनंतता को उसकी सर्वव्यापकता, सर्वशक्तिमत्ता और सर्वज्ञता से जोड़ा जाता है। ये गुण उसे परिमित सृष्टि में सक्रिय रूप से भाग लेने की क्षमता प्रदान करते हैं। उदाहरण के लिए, ईश्वर मानव प्रार्थनाओं का जवाब देता है, चमत्कार करता है, और यहाँ तक कि मानव रूप में अवतार लेता है (जैसे यीशु के रूप में)। यह दृष्टिकोण अनंतता और परिमितता के बीच एक सेतु बनाता है, हालाँकि यह पूर्ण रूप से इस रहस्य को हल नहीं करता कि अनंत कैसे परिमित के साथ संवाद करता है।

बुराई की समस्या और अनंतता

ईश्वर की अनंतता का दूसरा महत्वपूर्ण निहितार्थ “बुराई की समस्या” (Problem of Evil) से संबंधित है। यदि ईश्वर अनंत रूप से शक्तिशाली, सर्वज्ञ और सर्वथा अच्छा है, तो संसार में दुख, अन्याय और बुराई का अस्तित्व क्यों है? यह प्रश्न विशेष रूप से एकेश्वरवादी परंपराओं में प्रबल रहा है।
संत ऑगस्टाइन ने इस समस्या का जवाब मानव की मुक्त इच्छा के सिद्धांत से दिया। उनके अनुसार, ईश्वर ने मनुष्य को स्वतंत्रता दी, और बुराई इस स्वतंत्रता के दुरुपयोग का परिणाम है। यहाँ अनंतता का गुण ईश्वर को दोषमुक्त करता है, क्योंकि वह बुराई का स्रोत नहीं है। दूसरी ओर, कुछ दार्शनिकों ने तर्क दिया कि अनंत ईश्वर की योजना इतनी विशाल और गहरी हो सकती है कि मानव का परिमित मन उसे समझ ही न सके। यह विचार वैदिक दर्शन से भी मेल खाता है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं:
“अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते।”
(मैं सबका मूल हूँ; मुझसे ही सब कुछ प्रवृत्त होता है।)
यहाँ यह संकेत है कि ईश्वर की अनंत योजना में सब कुछ समाहित है, और मानव का परिमित दृष्टिकोण इसे पूर्ण रूप से समझने में असमर्थ है।
भारतीय दर्शन में, कर्म सिद्धांत के संदर्भ में, बुराई को पिछले कर्मों के परिणाम के रूप में देखा जाता है। ईश्वर यहाँ अनंत नियामक के रूप में कार्य करता है, जो कर्म के नियम को लागू करता है, न कि बुराई का सृजनकर्ता। इस प्रकार, अनंतता विभिन्न परंपराओं में बुराई के प्रश्न का सामना करने के लिए एक आधार प्रदान करती है।

संभावित विरोधाभास

ईश्वर की अनंतता की अवधारणा, जितनी गहन है, उतनी ही जटिल भी है। इसमें कुछ अंतर्निहित विरोधाभास उभरते हैं, जो इसके

स्वरूप पर और गहरा चिंतन करने के लिए प्रेरित करते हैं।

अनंतता और परिवर्तनशीलता

पहला विरोधाभास यह है कि यदि ईश्वर अनंत है, तो क्या वह परिवर्तनशील हो सकता है? परिवर्तन का अर्थ है एक अवस्था से दूसरी अवस्था में जाना—जैसे क्रोध से करुणा में, या निष्क्रियता से सक्रियता में। परिवर्तन स्वाभाविक रूप से परिमितता का लक्षण है, क्योंकि यह समय और प्रक्रिया पर निर्भर करता है। फिर भी, धार्मिक ग्रंथों में ईश्वर को परिवर्तनशील रूप में चित्रित किया गया है। बाइबिल में ईश्वर क्रोधित होता है और दया दिखाता है, जबकि हिंदू पुराणों में भगवान विष्णु विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं।
इस विरोधाभास को हल करने के लिए वैदिक दर्शन में सगुण और निर्गुण ईश्वर का अंतर प्रस्तुत किया गया है। मांडूक्य उपनिषद् कहता है:
"सर्वं ह्येतद् ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म सोऽयमात्मा चतुष्पात्।"
(यह सब कुछ ब्रह्म है; यह आत्मा ब्रह्म है; यह आत्मा चार अवस्थाओं वाला है।)
यहाँ निर्गुण ईश्वर को अनंत और अपरिवर्तनीय माना गया है, जबकि सगुण ईश्वर सृष्टि के साथ संवाद करने के लिए परिवर्तन का आभास देता है। पश्चिमी दर्शन में, एक्विनास ने तर्क दिया कि ईश्वर का मूल स्वरूप अपरिवर्तनीय है, और उसकी गतिशीलता केवल मानव के परिमित दृष्टिकोण का परिणाम है।
अनंतता और व्यक्तिगत संबंध
दूसरा विरोधाभास यह है कि अनंत ईश्वर को व्यक्तिगत रूप से कैसे जाना या अनुभव किया जा सकता है? मानव स्वाभाविक रूप से परिमित है—हमारी चेतना, भावनाएँ और समझ सीमाओं से बंधी हैं। यदि ईश्वर अनंत है, तो क्या वह मानव के साथ व्यक्तिगत संवाद करने में सक्षम है? यह प्रश्न भक्ति परंपराओं में प्रासंगिक है, जहाँ ईश्वर को एक प्रेमी मित्र या मार्गदर्शक के रूप में देखा जाता है।
भारतीय दर्शन में इसका समाधान सगुण और निर्गुण ईश्वर की अवधारणा से मिलता है। भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते हैं:
"भक्त्या मामभिजानाति यावान्यश्चास्मि तत्त्वतः।"
(भक्ति के द्वारा मुझे वास्तव में जाना जा सकता है कि मैं कौन हूँ और कितना हूँ।)
यहाँ सगुण ईश्वर मानव के लिए ग्रहण करने योग्य रूप में प्रस्तुत होता है, जबकि निर्गुण ईश्वर अनंत और निराकार रहता है। पश्चिमी परंपरा में, ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता उसे परिमित प्राणियों के साथ संवाद करने की क्षमता देती है, पर यह प्रश्न अनसुलझा रहता है कि क्या यह संवाद उसकी अनंतता को पूर्ण रूप से प्रतिबिंबित करता है।

निष्कर्ष

ईश्वर की अनंतता एक ऐसी अवधारणा है जो मानव मन को उसकी सीमाओं का बोध कराती है और उसे अपनी समझ के परे झांकने के लिए प्रेरित करती है। यह न केवल दार्शनिक चिंतन का एक गहन विषय है, बल्कि आध्यात्मिक अनुभव और विश्वास का आधार भी है। वैदिक श्लोकों के माध्यम से इसकी पुष्टि होती है कि ईश्वर वह सत्ता है जो सभी सीमाओं से परे है। कठोपनिषद् कहता है:

"न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य न चक्षुषा पश्यति कश्चनैनम्। हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥"
(उसका रूप दृष्टि में नहीं ठहरता, कोई उसे आँखों से नहीं देख सकता। हृदय, बुद्धि और मन से जो उसे जानते हैं, वे अमर हो जाते हैं।)
यह श्लोक बताता है कि अनंत ईश्वर को केवल आंतरिक अनुभूति और विश्वास से ही जाना जा सकता है।
ईश्वर की अनंतता हमें यह भी दिखाती है कि मानव जीवन की खोज—चाहे वह अर्थ की हो, सत्य की हो, या मुक्ति की—एक अनंत यात्रा हो सकती है। यह अवधारणा विभिन्न परंपराओं में अलग-अलग रूपों में प्रकट होती है, लेकिन इसका मूल संदेश एक ही है: ईश्वर वह सत्ता है जो सभी सीमाओं से परे है, और उसकी अनंतता को समझने का प्रयास स्वयं में एक आध्यात्मिक साधना है। इस प्रकार, ईश्वर की अनंतता न केवल एक दार्शनिक प्रश्न है, बल्कि मानव अस्तित्व के गहरे रहस्यों का प्रतीक भी है, जो हमें विस्मय, श्रद्धा और आत्म-चिंतन की ओर ले जाता है।
यह विस्तृत लेख ईश्वर की अनंतता को वैदिक श्लोकों के साथ समृद्ध करता है, जो इसके दार्शनिक और आध्यात्मिक आयामों को और गहराई प्रदान करते हैं। यह हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि अनंत को समझने की हमारी कोशिश ही वह मार्ग है जो हमें ईश्वर की ओर ले जाता है।